संवाद

# शिक्षा की पुनर्व्याख्या

❑ डा. एल. एन. मित्तल

'शिक्षा-विमर्श' के लेखों में उठाये गये मुद्दों पर हमें शिक्षा से संबंद्ध व्यक्तियों और पाठकों की गंभीर प्रतिक्रियाएं मिल रही हैं इन्हें हम इस स्तंभ में प्रकाशित कर रहे हैं । गतांक में आपने शिक्षा को पुनर्परिभाषित करने से संबंधित विचार पढ़े, इस बार शिक्षा के समूचे उपक्रम की पुनर्व्याख्या का मुद्दा उठाया गया है । साथ ही, बच्चों को सफल असफल घोषित करने वाले परीक्षा के कारोबार का भी जायजा लिया गया है ।

सन् 1949 में तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमन ने दक्षिण क्षेत्र के देशों को अविकसित देशों के रूप में घोषित किया। यानी किसी देश के 'विकास' को देखने के लिए अमरीकी पाश्चात्य चश्मा दिया गया और तथाकथित 'अविकसित देशों' (?) की अपनी निजी समझ और ज्ञान को पूर्णत: नकार दिया गया । गैर पाश्चात्य संस्कृतियों के प्रति तिरस्कार की यह दृष्टि मैकाले की 2 फरवरी 1835 को की गई टिप्पणी में भी झलकती है कि 'यूरोपीय पुस्तकों' से भरी एक आलमारी भारत और अरब के देशी साहित्य से बेहतर है ।' विश्व बैंक की एक ताजा रिपोर्ट से भी इसी कथन की पुष्टि होती है कि विकासशील देशों में ज्ञान प्राप्ति का साधन स्कूलों के अलावा अन्य कोई नहीं है जबकि पश्चिम के किशोर-किशोरियों के लिए टेलीविजन, पुस्तकालय, समाचार-पत्र और परिवार के शिक्षित व्यक्तियों का सानिध्य प्राप्त है ।

यह सोच गैर पाश्चात्य संस्कृतियों को केवल एक पैमाने पर नापता है - 'विकास की पश्चिमी दृष्टि' । शिक्षा को मानव संसाधन का एक उपक्रम बनाना ही इस दृष्टिकोण का लक्ष्य है । विकास के इस पैमाने पर हम पाते हैं कि तथाकथित विकासशील देशों में जनसंख्या का दबाव शहरों की ओर बढ़ता जा रहा है और ग्रामीण उद्योग-धन्धे नष्ट होते चले जा रहे हैं । शिक्षा भी अपने आप में एक लक्ष्य न होकर उत्पादन का एक साधन मात्र बन गया है और 'ज्ञान' का स्थान 'सूचना' तथा 'सतही जानकारी' ने ले लिया है। मूल्यों के संदर्भ में शिक्षा की कोई सार्थकता है, यह बात भुला दी गई है । विकास की इस पश्चिमी अवधारणा का आधार भी पाश्चात्य शिक्षा है और यह पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली तथाकथित अविकसित देशों में अपने साथ एक अपरिचित शिक्षा प्रणाली लाती है, एक विदेशी भाषा के माध्यम से । इस शिक्षा प्रणाली में शिक्षित व्यक्ति अपने ही सजातीय परन्तु देशी प्रणाली से दीक्षित व्यक्ति को हीन भावना से देखता है और वह अपने सारे परिवेश, परिवार, समाज और समुदाय से कट कर न तो पूर्णत: पाश्चात्य संस्कृति आत्मसात कर पाता है न ही पाश्चात्यों को स्वीकार्य होता है । इस दुविधा में वह व्यक्ति अपने को अकेला, भ्रमित और मूलधारा से कटा हुआ पाता है ।

इन सब परिस्थितियों ने युवाओं में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का ह्रास कर दिया है । आज का पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित ग्रामीण युवा साफ सुथरा बाबूगिरी का काम चाहता है और हल जोतना अपनी शान के खिलाफ समझता हैं । अपनी संस्कृति दर्शन और इतिहास से उसका नाता टूट चुका है। स्थानीय परिवेश की प्रासंगिकता उसके लिए निरर्थक हो गई है। ऐसा युवा समाज के प्रति कोई सकारात्मक भूमिका नहीं निभा पाता। कृषि के बेहतरीन तरीकों से अनभिज्ञ वह युवा गांवों में, अंचलों में, अपनी जमीन को बंजर पड़ी रहने में कोई हेठी नहीं समझता ।

ऐसी परिस्थिति में टिकाऊ-विकास की क्या अवधारणा होगी। पाश्चात्य विकास की अवधारणा ने तीसरी दुनिया के देशों में भी भोगवाद को बढ़ा दिया है । प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी, पर्यावरण प्रदूषण, बेतहाशा उपभोग, ऊर्जा, जल, कृषि, सड़क और अन्य संसाधनों में बढ़ती भागीदारी ने धनवानों के उपभोक्तावाद का विस्तार ही किया है । इस उपभोक्तावाद का दुष्परिणाम अन्तत: अल्प विकसित देशों और निर्धनों को ही भुगतना पड़ता है । जैसे पृथ्वी का तापमान बढ़ने के कारण पर्यावरण में आये परिवर्तनों से उपजे सूखा, अतिवृष्टि, ओला वृष्टि, बाढ़ आदि से सर्वाधिक हानि निर्धनों की ही होती है जो तीसरी दुनिया में रह रहे हैं । पूरी दुनिया में गरीब आमतौर पर धुंआ उगलती फैक्ट्रियों, भीड़ भरी सड़कों और कूड़े के ढेरों के पास रहते हैं । उपभोक्तावाद के दुष्परिणाम ने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में अनियन्त्रित वृद्धि कर दी है : जैसे पानी का उपभोग पांच गुना बढ़ गया है, भूमिगत ईंधन का उपभोग सौ गुना बढ़ गया है, लकड़ी का व्यापारिक और घरेलू उपयोग 80

प्रतिशत बढ़ गया है।

इस उपभोक्तावाद का परिणाम हमारी सोच प्रक्रिया पर भी पड़ा है और इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की भरमार हो गई है । सरकारी स्कूलों की कमी और उनकी असमर्थता ने प्राथमिक शिक्षा को व्यवसाय बना दिया है और अंग्रेजी माध्यम प्राइवेट स्कूलों को आदर और सम्मान या कहें श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाने लगा है । इनमें दीक्षित बच्चे समाज में कुछ ज्यादा इज्जत से देखे जाते हैं ।

ऐसे परिदृश्य में समाज में किसी सकारात्मक भूमिका के लिए युवाओं को तैयार करने के लिए शिक्षा की परम्परागत अवधारणा को बदलना होगा। भाषा को संचार और अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना, इतिहास को भारतीय दर्शन और संस्कृति से जोड़ना , गणित से तर्क शक्ति को विकसित करना, विज्ञान से विश्लेषणात्मक सोच को बढ़ावा देना, व्यवसाय और प्रबन्धन के सिद्धांतों को आय वृद्धि परक व्यवसायों को स्थापित करने के कौशल से जोड़ना, समाज शास्त्र को गैर सामाजिक और राजनैतिक विचारधाराओं की विवेचना में प्रयुक्त करना होगा । यह 'संजीवनी' शिक्षा का आधार हो सकती है । स्थानीय परिवेश की प्रासंगिकता, संगीत, नृत्य, पर्यटन का पाठ्यक्रम में समावेश साथ ही पारम्परिक शिक्षा की परीक्षाएं प्राइवेट रूप से उत्तीर्ण करने की सुविधा 'संजीवनी' के आधार होंगे ।

लोग अपने फैसले खुद लें, महिलाओं के सन्दर्भ में बुनियादी सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा का ताना बाना बुना जाये, भूमण्डलीकरण से स्थानीय हाट को बचाया जाये, पर्यावरणीय संरक्षण पर ध्यान दिया जाये, उपभोक्तावाद पर अंकुश लगे, ताकि टिकाऊ विकास का मॉडल तलाशा जा सके ।

यह अवधारणा कि सरकार निरक्षरता, अशिक्षा, गरीबी और असमानता दूर करेगी, गलत है। गरीबी यदि दूर होगी तो उसे गरीब स्वयं दूर करेंगे क्योंकि वे स्वयं ही अपने मुक्तिदाता है ।◆